IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

# मंच प्रदर्शन से संगीत में नवोन्मेष

अनादि मिश्रा
शोधार्थी (संगीत विभाग), वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

सृजनशीलता प्रकृति का सर्वोत्तम गुण है जिसे जानना, समझना व परिभाषित करना सरल नही है। सामान्य रूप से हम कह सकते है कि जीवन और जगत के बहुआयामी यथार्थ को एक बने बनाये ढांचे में ढालकर यान्त्रिक रूप में प्रस्तुत करने की अपेक्षा एक नये ढंग से व्यष्टि और समष्टि के सम्बन्धों को समझते हुये उस यथार्थ को सामने लाते हैं जो ज्ञान की विविध कलाओ अथवा विधाओ से सम्बन्ध रखता है। इसमें हमें नवाचार, नवोन्मेष और सृजनशीलता का परिचय प्राप्त होता है। लेकिन यह नव्यता बदलते हुये फैशन जैसा नयापन नही, ऐतिहासिक नयापन होना चाहिये। दूसरे शब्दों में कहे तो सृजनशीलता ऐतिहासिक नवीनता में परिलक्षित होनी चाहिये।

सृजनशीलता को सामान्य रूप में साहित्य एवं कलाओं से ही जोड़कर देखा जाता है जबकि वास्तविकता में उसका सम्बन्ध जीवन के सभी क्षेत्रों और मनुष्य की सभी गतिविधियों से है। सम्भवतः इसलिये ही इसका अध्ययन विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित लोग करते हैं तथा इसकी चर्चा मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक सौन्दर्यशास्त्रीय आदि अनेक दृष्टियों से की जाती है। वस्तुतः नवीनता प्रत्येक क्षेत्र में अपेक्षित है। यद्यपि सृजनशीलता का महत्व ज्ञान–विज्ञान की प्रत्येक विधा से सम्बद्ध है तथा संगीत कला में इसका विशेष महत्व है। प्रत्येक सृजनशील व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रकृ ति होती है जिससे वह अपनी क्षमतानुसार संगीत की अन्तर्वस्तु में शिल्पगत व कलागत सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये कुछ नवाचारों का प्रयोग करता है जिससे सृजित वस्तु में कलागत नवोन्मेष का अविर्भाव होता है। यद्यपि संगीत की यह संप्रेषण की प्रक्रिया नितान्त व्यक्तिक और नवोन्मेषालिनी प्रक्रिया पर अवलम्बित होती है तथापि कलागत सम्प्रेषण के वैभव के द्वारा कलाकार समाजिक या श्रोताओं की अनुभूतियों से साक्षात्कार करवाता है। कलागत नवोन्मेष साधारणीकरण की रस प्रक्रिया से गुजरकर रसानुभूति की अवस्था तक पहुँच कर व्यक्तिगत धरातल से निकलकर समष्टिगत धरातल तक पहुँच जाता है। यह नवोन्मेष संगीत परम्परा की विरासत को आत्मसात

करते हुये अपनी नव्यतम सोच द्वारा सृजनशीलता से नये–2 नवाचारों को उत्पन्न करके परम्परा को समृद्ध करता है।

संगीत के इस अनूठे नवोन्मेष में मंच प्रदर्शन का सर्वाधिक योगदान माना जा सकता है जिसका उल्लेख प्रासंगिक है।

मंच ऐसा स्थान विशेष है जहाँ एक या अनेक व्यक्ति एक साथ बैठकर अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। यह एक ऐसा केन्द्र बिन्दु है जहाँ कलाकार बैठकर सुविधापूर्वक श्रोताओं को अपनी कला का रसास्वादन कराता है। मंच के चारो ओर या सामने श्रोताओं के बैठने का स्थान आवश्यक रूप से होता है। इस प्रकार मंच का सम्बन्ध कलाकार तथा श्रोता दोनो से है। इस मंच पर श्रोताओं के समक्ष अपनी कला का प्रदर्शन करने के कारण इसे 'सम्मेलन' कहा गया है जिसका अर्थ मेल, मिलाप अथवा मेला से लिया जाता है।

भारतीय संस्कृति की परम्परायें मुख्य रूप से मौखिक रही है जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी विरासत के रूप में प्रवाहित होती रही है। इन परम्पराओं के संरक्षण व सम्वर्धन में सदैव एक मंच की आवश्यकता रही है जहाँ लोग एकत्र होकर इस लक्ष्य की पूर्ति कर सकें। मंच छोटा या बड़ा, बन्द अथवा खुला किसी भी रूप में रहा हो, प्राचीन समय से आधुनिक समय तक लोगों के समूह को आकर्षित करके एक समारोह का स्वरूप प्रदान करता रहा है। हर काल में लोगों ने अपने मन के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति के लिये हर विशिष्ट अवसरों पर वैचारिक व कलात्मक आदान–प्रदान हेतु मेल–मिलाप की परम्पराओं को विकसित किया है। कलात्मक आदान–प्रदान के अतिरिक्त मंचीय व्यवस्था ने समाज को एकता व भाईचारे के सूत्र में बांधने का महान कार्य किया है। इसी मेल मिलाप से मेलों, समारोहों एवं सम्मेलनों का स्वरूप निर्धारित हुआ। कालान्तर में ये विशेष समारोह उत्सवों त्योहारों अथवा विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियों से जुड़कर परम्परा का निर्वाह करने लगे।

डा. विवेक का कथन है– ''संगीत को संस्कृति का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना गया है, क्योंकि इसके माध्यम से हमने अपने वर्षों से अर्जित ज्ञान–विज्ञान, धर्म, दर्शन योग तथा समस्त कलाओं को जीवित रखा है। हर काल में आध्यात्मिक कार्यों में, हवन यज्ञ व अनुष्ठानों तथा आनन्द के क्षणों में संगीत ने अनिवार्य रूप से अपना योगदान प्रदान करके कार्यक्रमों को सफलता प्रदान की है। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि हर काल में किसी न किसी रूप में संगीत के समारोहों की स्वस्थ परम्परा रही है।''[1] इसी संदर्भ में डा. ममता जोशी का कथन भी प्रासंगिक है– ''जीवन के प्रत्येक शुभ एवं उल्लासपूर्ण अवसरों पर संगीत अभूतपूर्व आनन्द प्रदान करता रहा है।

अन्तेष्ठि जैसे अवसादपूर्ण अवसरों पर भी सामगान किया जाता था। देवताओं को प्रसन्न करने के लिये संगीत की उपयोगिता रामायण में भी स्वीकार की गई है। महाभारत में भी संगीत का जो विकसित स्वरूप मिलता है। वह सराहनीय है। महाभारत काल में वैदिक तथा लौकिक दोनों प्रकार की संगीत प्रणालियों का समान रूप से प्रचलन था। गायक–वादक–नर्तक आदि कलाकारों को राज्य की ओर से पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त था।''[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि संगीत की इस लम्बी यात्रा में लोगों का एकत्रित होना, मंच परम्परा अथवा संगीत समारोहों के आयोजनो की परम्परा स्वाभाविक रूप से हर काल में विद्यमान रही है। इन समारोहों ने कई पड़ाव देखे हैं। मध्यकाल में राजाओं ने अपनी अभिरूचि अथवा मनोरंजन के लिये इन समारोहों का राजकीय संरक्षण प्रदान किया। यद्यपि समारोहों की दृष्टि से ब्रिटिश काल अन्धकार का युग माना गया अपितु स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त पं विष्णुनारायण भातखण्डे तथा पं विष्णु दिगम्बर पलुस्कर आदि महान् संगीत की विभूतियों के प्रयत्न से संगीत का पुर्नःजन्म तथा उत्थान हुआ। इन्होने विभिन्न समारोहों के मंचन द्वारा संगीत को पुनः उसका प्रतिष्ठित स्थान दिलवाया।

इस मंचीय व्यवस्था अथवा संगीत सम्मेलन के विषय में डा. हुकुम चन्द लिखते हैं– ''सर्वप्रथम इनको 'समन' नाम से पुकारा जाता था। इसके उपरान्त ये 'समज्जा' के नाम से जाने जाने लगे। आज इनको 'संगीत सम्मेलन' के नाम से सम्बोधित करने की प्रथा है। संगीत समारोह इसका पर्यायवाची शब्द है''[3] भगवत शरण शर्मा लिखते हैं– ''आधुनिक समय में इन संगीत सम्मेलनों ने संगीत के प्रचार तथा प्रसार में विशेष भूमिका निभाई है। इस युग में संगीत सम्मेलनों को आयोजित करने की परम्परा बहुत विकसित हुई है। सर्वप्रथम संगीत सम्मेलन 1916 ई. में बडौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ की संरक्षता में, दूसरा सन् 1917 ई. में दिल्ली में रामपुर के नवाब की संरक्षता में, तृतीय 1917 ई. में बनारस में, चतुर्थ तथा पंचम क्रमशः 1926 तथा 1926 ई. में लखनऊ में सम्पन्न हुआ।''[4] यद्यपि आरम्भ में इन संगीत सम्मेलनों में संगीत–विषयक चर्चाओं का आधिक्य रहा अपितु धीरे–2 इन सम्मेलनों में शास्त्रीय संगीत के कलाकारों ने अपने संगीत के मंचीय प्रदर्शन द्वारा पूरे भारतवर्ष में संगीत का प्रचार व प्रसार कर दिया।

आधुनिक समय में त्यागराज, तानसेन व स्वामी हरिदास जैसे ख्यातिप्राप्त संगीतकारों, विष्णु दिगम्बर, भातखण्डे तथा आर्चाय वृहस्पति जैसी महान् विभूतियों की स्मृति में हमारी संगीत की संस्थायें वाषिकोत्सव आयोजनों के मंचन में संलग्न है। आधुनिक समय में सरकार की ओर से भी इन मंच प्रदशनों को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। आकाशवाणी संगीत सम्मेलन, हरिबल्लभ

संगीत सम्मेलन, ध्रुपद सम्मेलन, मल्हार उत्सव, बसंतोत्सव आदि अनेकानेक संगीत सम्मेलन मंच प्रदर्शन के अनुपम उदाहरण हैं।

संगीत के प्रदर्शन हेतु मंचीय परम्परा का विकास बहुत प्राचीनकाल से हो गया था। आज के युग में अनेकानेक बदलाव आ जाने से प्रदर्शन के बहुत से ढंग विकसित हो चुके हैं तथापि मंचीय व्यवस्था फिर भी ज्यों की त्यों है। भले ही मंच रेडियों अथवा आकाशवाणी केन्द्रों ने अपना लिये हों। मंच का फिर भी अपना महत्व विशेष है। छोटा या बड़ा, सीमित या असीमित, मंच किसी भी रूप में रहा हो यह हर प्रकार से प्रदर्शन के लिये अनिवार्य है। मंच के बिना प्रदर्शन सम्भव ही नहीं। वस्तुतः आज हम जिस सांगीतिक धरातल पर हैं वह मंच की ही देन है। मंच ने ही संगीत प्रदर्शन द्वारा संगीत के सृजनात्मक तत्वों को प्रेरित किया है जिसका उल्लेख निम्नलिखित नवोन्मेष के बिन्दुओं से स्पष्ट हो जाता है।

1. संगीत के क्षेत्र में घरानों की भूमिका अग्रगण्य रही है। यद्यपि संगीत के घरानो अथवा परम्पराओं में परस्पर स्पर्धा या मनमुटाव का बोलबाला रहा है और इस कारण ये लोग परस्पर बंटे भी रहे हैं तथापि यह सत्य है कि घरानो के संस्थापकों व अनुयायियों ने अपनी पारम्परिक कला–सम्वर्धन व संरक्षण का दायित्व पूरे मनोयोग से निभाया है। घरानों ने ही एक रसता से हटकर संगीत में विविधता का सृजन किया है। यही कारण है कि घरानो से सृजनात्मक तत्वों का विस्तृत भण्डार परिलक्षित होता है। घरानों के इन अनमोल सृजनात्मक कार्यों की स्थापना, मान्यता तथा मूल्यांकन का श्रेय मंच प्रदर्शन को जाता है जहाँ विविध घरानों के कलाकारों को अपनी विशिष्ट योग्यता के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। संगीत तो एक विशाल सागर है जिसका सम्पूर्ण ज्ञान असम्भव है तथापि घरानेदार लोग किसी विशेष साधना द्वारा संगीत के किसी एक पक्ष को इतना साध लेते हैं कि वह उस घराने की विशेषता बन जाती है। इसी एक विशेषता के बल पर घराने का नाम हो जाता है। मंच ने विविध घराने के कलाकारों को एक स्थान पर एकत्रित करके उनकी सृजनात्मक प्रतिभा को सबके सामने रख दिया। घराने को स्थापित करने में बड़ा संघर्ष करना पड़ता है। उसके कलाकार को अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का किसी मंच के माध्यम से मूल्यांकन करके उसे मान्यता प्रदान करना आवश्यक है। कलाकार जिस भी सांगीतिक पक्ष को साधता है, मंच के माध्यम से श्रोताओं द्वारा उसकी सृजनात्मक कला का परीक्षण किया जाता है। परीक्षण में

सही उतरने पर उसे घरानेदारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। मंच इस सृजनात्मक प्रतिभा को उभारने में रचनात्मक योगदान करता है।

2. मंच प्रदर्शन में कलाकार व श्रोताओं के मध्य एक अदृष्य तथा पवित्र सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। श्रोता कलाकार के लिये प्रेरणा के स्त्रोत माने जाते है। उनकी रूचि और ज्ञान क्षमता के अनुरूप संगीत प्रदर्शन का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। एक मंच पर विभिन्न कलाकारों को सुनने के बाद श्रोता उनसे व्यक्तिगत रूप से जुड़ जाते हैं जिससे मनपसन्द के कलाकारों को अन्य स्थानो तथा घर पर भी बुलाया जाता है। इससे मंच द्वारा ही गुरू शिष्य परम्परा के विकास को बल मिलता है। सर्वविदीत है कि उच्च स्तरीय कलाकार जैसे पं. रविशंकर, उस्ताद विलायत अली खां, उस्ताद अमीर खां, प. भीम सेन जोशी, पं. हरिप्रसाद चौरसिया, प्रवीण सुल्ताना, उस्ताद अमजद अली, उस्ताद विस्मिल्ला खां आदि महान कलाकार मंच प्रदर्शन के कारण ही विख्यात हुये हैं तथा इसकी सृजनात्मक प्रतिभा से प्रभावित होकर इनके हजारों शिष्य शिक्षित हुये हैं।

यह मंच का ही परिणाम था जिसने गुरू–शिष्य परम्परा ने नवीन आयाम खोजकर संगीत के सृजन व नवोन्मेष में महत्वपूर्ण योगदान किया।

3. मंच प्रदर्शन में सर्वाधिक विशेष महत्व इस बात का है कि संगीत विद्या के हरेक कलाकारों को मंच पर एक साथ देखा जा सकता है। इससे कार्यक्रम की रोचकता बढ़ जाती है। गायन, वाद्य वादन, तबला वादन तथा नृत्य के कलाकारों को एक साथ मंच पर देखकर श्रोताओं को एक बहुरंगी कार्यक्रम देखने–सुनने को मिलता है। कलाकारों की एकल तथा सामूहिक रूप से प्रस्तुति, विभिन्न वाद्यों को एकल तथा वाद्य–वृन्द के रूप में अथवा संगत के रूप में सुनने को मिलती है। कलाकारों, कार्यक्रमों अथवा रागों की पुनरावृति भी नही होती। जिससे कार्यक्रम में विविधता, नवीनता व रोचकता का साम्राज्य रहता है। मंच प्रदर्शन में कलाकार श्रोताओं के समक्ष अपनी सम्पूर्ण कलात्मक प्रतिभा का परिचय देने का अपनी सम्पूर्ण क्षमता के अनुसार प्रयत्न करते हैं। कलाकार बिना कुछ छुपाये अर्जित की हुई समस्त विद्या का प्रदर्शन पूरे मनोबल से करते हैं। जिससे उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का सहज परिचय मिल जाता है। मंच व्यवस्था में कलाकार श्रोताओं के मनोभावों का सम्मान करते हुये उनकी रूचि या अरूचि को ध्यान में रखकर प्रदर्शन करते हैं। श्रोताओं की

फरमाईश पर नवीन रचनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार मंच प्रदर्शन में श्रोताओं और कलाकार के बीच एक सृजनात्मक–सेतु का निर्माण हो जाता है।

4. मंच प्रदर्शन में नवीन प्रयोगों को सदैव प्रोत्साहन मिलता है। कलाकार द्वारा नये–2 रागों का प्रदर्शन, रागों की नवीन रचनाये, अछोप तथा अप्रचलित रागों का प्रदर्शन, अनेक तालों का प्रदर्शन तथा अनेक वाद्य यन्त्र का प्रदर्शन आदि बाते बहुत महत्वपूर्ण रहती हैं। संगीत की यह विविध सामग्री संगीत में नवोन्मेष का संचार करके अत्यन्त ज्ञानवर्धक हो जाती है। श्रोताओं को मनोरंजन के साथ अनेक नवीन बातों का ज्ञान हो जाता है। कलाकार अपनी विशेष साधना से श्रोताओं को बार–2 प्रभावित करते हैं। कोई कलाकार आलापचारी में कोई गमक में तो कोई तान की विशेष तैयारी में दक्ष होता है। कोई आलाप से भावुकता संचार करता है तो कोई कलात्मक व चमत्कृत कार्यों से प्रभावित करता है। इस प्रकार अलग–2 विशेषताओं के सृजन से संगीत का एक सुन्दर गुलदस्ता बन जाता है जिससे हर प्रकार आनन्द की प्राप्ति होती है। यह मंच की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है जो नवोन्मेष की ओर प्रेरित करती है।

5. मंच प्रदर्शन में विविधता रहती है। इसमें हर पक्ष का कलाकार हर वाद्य–यन्त्र तथा हर रचना अपने नवीनतम स्वरूप में प्रगट होती है। मल्हार उत्सव में मल्हार के प्रकारों का प्रदर्शन होता है। इसी प्रकार बसन्तोत्सव पर बसन्त ऋतु सम्बन्धी अनेकानेक रचनायें प्रदर्शित की जाती है, इस विविधता व नवीनता से ही रोचक वातावरण का निर्माण हो जाता है जो संगीत सृजनशीलता की पराकाष्टा को दर्शाता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संगीत की इस लम्बी यात्रा में मंचीय व्यवस्था ने संगीत की नवीनता व विविधता को अनेकानेक आयाम देकर इसे अत्यन्त समृद्ध किया है जिससे संगीत में नवोन्मेष के द्वार का मार्ग प्रशस्त हुआ है।

**सन्दर्भः–**

1. शर्मा डा. विवेक (2018), जालन्धर को सांस्कृतिक पीठिका में संगीत की विकासधारा, D:Lit Then's HDU
2. जोशी डा. ममता (2011), भारतीय संगीत में हरिबल्लभ संगीत सम्मेलन का प्रभाव, पृष्ठ–11
3. चन्द डा. हुकुम (2005), आधुनिक काल में शास्त्रीय संगीत, पृ. 144
4. शर्मा भगवत शरण (1983), भारतीय संगीत का इतिहास, पृ. 130